श्रम-विभाजन और जाति-प्रथा, मेरी कल्पना का आदर्श समाज

लेखक परिचय

जीवन परिचय-मानव-मुक्ति के पुरोधा बाबा साहब भीमराव आंबेडकर का जन्म 14 अप्रैल, 1891 ई० को मध्य प्रदेश के महू नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता का नाम श्रीराम जी तथा माता का नाम भीमाबाई था। 1907 ई० में हाई स्कूल की परीक्षा पास करने के बाद इनका विवाह रमाबाई के साथ हुआ। प्राथमिक शिक्षा के बाद बड़ौदा नरेश के प्रोत्साहन पर उच्चतर शिक्षा के लिए न्यूयार्क और फिर वहाँ से लंदन गए। इन्होंने कोलंबिया विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त की। 1923 ई० में इन्होंने मुंबई के उच्च न्यायालय में वकालत शुरू की। 1924 ई० में इन्होंने **बहिष्कृत हितकारिणी सभा** की स्थापना की। ये संविधान की प्रारूप समिति के सदस्य थे। दिसंबर, 1956 ई० में दिल्ली में इनका देहावसान हो गया।
रचनाएँ – बाबा साहब आंबेडकर बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न व्यक्ति थे। हिंदी में इनका संपूर्ण साहित्य भारत सरकार के कल्याण मंत्रालय ने **'बाबा साहब आंबेडकर-संपूर्ण वाङ्मय'** के नाम से 21 खंडों में प्रकाशित किया है। इनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं –

पुस्तकें व भाषण – दे कास्ट्स इन इंडिया, देयर मेकेनिज़्म, जेनेसिस एंड डेवलपमेंट (1917), द अनटचेबल्स, हू आर दे? (1948), हू आर द शूद्राज (1946), बुद्धा एंड हिज धम्मा (1957), थॉट्स ऑन लिंग्युस्टिक स्ट्रेटेस (1955), द प्रॉब्लम ऑफ़ द रूपी (1923), द एबोल्यूशन ऑफ़ प्रोविंशियल फायनांस इन ब्रिटिश इंडिया (1916), द राइज एंड फ़ॉल ऑफ़ द हिंदू वीमैन (1965), एनीहिलेशन ऑफ़ कास्ट (1936), लेबर एंड पार्लियामेंट्री डैमोक्रेसी (1943), बुद्धज्म एंड कम्युनिज़्म (1956)।
पत्रिका-संपादन – मूक नायक, बहिष्कृत भारत, जनता।

साहित्यिक विशेषताएँ – बाबा साहब आधुनिक भारतीय चिंतकों में से एक थे। इन्होंने संस्कृत के धार्मिक, पौराणिक और वैदिक साहित्य का अध्ययन किया तथा ऐतिहासिक-सामाजिक क्षेत्र में अनेक मौलिक स्थापनाएँ प्रस्तुत कीं। ये इतिहास-मीमांसक, विधिवेत्ता, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, शिक्षाविद् तथा धर्म-दर्शन के व्याख्याता बनकर उभरे। स्वदेश में कुछ समय इन्होंने वकालत भी की। इन्होंने अछूतों, स्त्रियों व मजदूरों को मानवीय अधिकार व सम्मान दिलाने के लिए अथक संघर्ष किया। डॉ० भीमराव आंबेडकर भारत संविधान के निर्माताओं में से एक हैं। उन्होंने जीवनभर दलितों की मुक्ति व सामाजिक समता के लिए संघर्ष किया। उनका पूरा लेखन इसी संघर्ष व सरोकार से जुड़ा हुआ है। स्वयं डॉ० आंबेडकर को बचपन से ही जाति आधारित उत्पीड़न, शोषण व अपमान से गुजरना पड़ा था। व्यापक अध्ययन एवं चिंतन-मनन के बल पर इन्होंने हिंदुस्तान के स्वाधीनता संग्राम में एक नई अंतर्वस्तु प्रस्तुत करने का काम किया। इनका मानना था कि दासता का सबसे व्यापक व गहन रूप सामाजिक दासता है और उसके उन्मूलन के बिना कोई भी स्वतंत्रता कुछ लोगों का विशेषाधिकार रहेगी, इसलिए अधूरी होगी।

पाठ का प्रतिपादय एवं सारांश

1. श्रम-विभाजन और जाति-प्रथा

प्रतिपादय-यह पाठ आंबेडकर के विख्यात भाषण 'एनीहिलेशन ऑफ़ कास्ट'(1936) पर आधारित है। इसका अनुवाद ललई सिंह यादव ने 'जाति-भेद का उच्छेद' शीर्षक के अंतर्गत किया। यह भाषण 'जाति-पाँति तोड़क मंडल' (लाहौर) के वार्षिक सम्मेलन (1936) के अध्यक्षीय भाषण के रूप में तैयार किया गया था, परंतु इसकी क्रांतिकारी दृष्टि से आयोजकों की पूर्ण सहमति न बन सकने के कारण सम्मेलन स्थगित हो गया। सारांश-लेखक कहता है कि आज के युग में भी जातिवाद के पोषकों की कमी नहीं है। समर्थक कहते हैं कि आधुनिक सभ्य समाज कार्य-कुशलता के लिए श्रम-विभाजन को आवश्यक मानता है। इसमें आपत्ति यह है कि जाति-प्रथा श्रम-विभाजन के साथ-साथ श्रमिक विभाजन का भी रूप लिए हुए है।

श्रम-विभाजन सभ्य समाज की आवश्यकता हो सकती है, परंतु यह श्रमिकों का विभिन्न वर्गों में अस्वाभाविक विभाजन नहीं करती। भारत की जाति-प्रथा श्रमिकों के अस्वाभाविक विभाजन के साथ-साथ विभाजित विभिन्न वर्गों को एक-दूसरे की अपेक्षा ऊँच-नीच भी करार देती है। जाति-प्रथा को यदि श्रम-विभाजन मान लिया जाए तो यह भी मानव की रुचि पर आधारित नहीं है। सक्षम समाज को चाहिए कि वह लोगों को अपनी रुचि का पेशा करने के लिए सक्षम बनाए। जाति-प्रथा में यह दोष है कि इसमें मनुष्य का पेशा उसके प्रशिक्षण या उसकी निजी क्षमता के आधार पर न करके उसके माता-पिता के सामाजिक स्तर से किया जाता है। यह मनुष्य को जीवन-भर के लिए एक पेशे में बाँध देती है। ऐसी दशा में उद्योग-धंधों की प्रक्रिया व तकनीक में परिवर्तन से भूखों मरने की नौबत आ जाती है। हिंदू धर्म में पेशा बदलने की अनुमति न होने के कारण कई बार बेरोजगारी की समस्या उभर आती है।

जाति-प्रथा का श्रम-विभाजन मनुष्य की स्वेच्छा पर निर्भर नहीं रहता। इसमें व्यक्तिगत रुचि व भावना का कोई स्थान नहीं होता। पूर्व लेख ही इसका आधार है। ऐसी स्थिति में लोग काम में अरुचि दिखाते हैं। अत: आर्थिक पहलू से भी जाति-प्रथा हानिकारक है क्योंकि यह मनुष्य की स्वाभाविक प्रेरणा, रुचि व आत्म-शक्ति को दबाकर उन्हें स्वाभाविक नियमों में जकड़कर निष्क्रिय बना देती है।

2. मेरी कल्पना का आदर्श समाज

प्रतिपादय-इस पाठ में लेखक ने बताया है कि आदर्श समाज में तीन तत्व अनिवार्यत: होने चाहिए-समानता, स्वतंत्रता व बंधुता। इनसे लोकतंत्र सामूहिक जीवनचर्या की एक रीति तथा समाज के सम्मिलित अनुभवों के आदान-प्रदान की प्रक्रिया के अर्थ तक पहुँच सकता है। सारांश-लेखक का आदर्श समाज स्वतंत्रता, समता व भ्रातृत्त पर आधारित होगा। समाज में इतनी गतिशीलता होनी चाहिए कि कोई भी परिवर्तन समाज में तुरंत प्रसारित हो जाए। ऐसे समाज में सबका सब कार्यों में भाग होना चाहिए तथा सबको सबकी रक्षा के प्रति सजग रहना चाहिए। सबको संपर्क के साधन व अवसर मिलने चाहिए। यही लोकतंत्र है। लोकतंत्र मूलत: सामाजिक जीवनचर्या की एक रीति व समाज के सम्मिलित अनुभवों के आदान-प्रदान का नाम है। आवागमन, जीवन व शारीरिक सुरक्षा की स्वाधीनता, संपत्ति, जीविकोपार्जन के लिए जरूरी औजार व

सामग्री रखने के अधिकार की स्वतंत्रता पर किसी को कोई आपत्ति नहीं होती, परंतु मनुष्य के सक्षम व प्रभावशाली प्रयोग की स्वतंत्रता देने के लिए लोग तैयार नहीं हैं। इसके लिए व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता देनी होती है। इस स्वतंत्रता के अभाव में व्यक्ति 'दासता' में जकड़ा रहेगा।

'दासता' केवल कानूनी नहीं होती। यह वहाँ भी है जहाँ कुछ लोगों को दूसरों द्वारा निर्धारित व्यवहार व कर्तव्यों का पालन करने के लिए विवश होना पड़ता है। फ्रांसीसी क्रांति के नारे में 'समता' शब्द सदैव विवादित रहा है। समता के आलोचक कहते हैं कि सभी मनुष्य बराबर नहीं होते। यह सत्य होते हुए भी महत्व नहीं रखता क्योंकि समता असंभव होते हुए भी नियामक सिद्धांत है। मनुष्य की क्षमता तीन बातों पर निर्भर है –

1. शारीरिक वंश परंपरा,
2. सामाजिक उत्तराधिकार,
3. मनुष्य के अपने प्रयत्न।

इन तीनों दृष्टियों से मनुष्य समान नहीं होते, परंतु क्या इन तीनों कारणों से व्यक्ति से असमान व्यवहार करना चाहिए। असमान प्रयत्न के कारण असमान व्यवहार अनुचित नहीं है, परंतु हर व्यक्ति को विकास करने के अवसर मिलने चाहिए। लेखक का मानना है कि उच्च वर्ग के लोग उत्तम व्यवहार के मुकाबले में निश्चय ही जीतेंगे क्योंकि उत्तम व्यवहार का निर्णय भी संपन्नों को ही करना होगा। प्रयास मनुष्य के वश में है, परंतु वंश व सामाजिक प्रतिष्ठा उसके वश में नहीं है। अत: वंश और सामाजिकता के नाम पर असमानता अनुचित है। एक राजनेता को अनेक लोगों से मिलना होता है। उसके पास हर व्यक्ति के लिए अलग व्यवहार करने का समय नहीं होता। ऐसे में वह व्यवहार्य सिद्धांत का पालन करता है कि सब मनुष्यों के साथ समान व्यवहार किया जाए। वह सबसे व्यवहार इसलिए करता है क्योंकि वर्गीकरण व श्रेणीकरण संभव नहीं है। समता एक काल्पनिक वस्तु है, फिर भी राजनीतिज्ञों के लिए यही एकमात्र उपाय व मार्ग है।

शब्दार्थ

विडंबना – उपहास का विषय। **पोषक –** बढ़ाने वाला। **समर्थन –** स्वीकार। **आपतिजनक –** परेशानी पैदा करने वाली बात। **अस्वाभाविक –** जो सहज न हो। **करार –** समझौता। **दूषित –** दोषपूर्ण। **प्रशिक्षण –** किसी कार्य के लिए तैयार करना। **निजी –**अपनी, व्यक्तिगत। **दृष्टिकोण –** विचार का ढंग। **स्तर –** श्रेणी, स्थिति। **अनुपयुक्त –** उपयुक्त न होना। **अययाति –** नाकाफी। **तकनीक –** विधि।
प्रतिकूल – विपरीत। **चारा होना –** अवसर होना। **पैतृक –** पिता से प्राप्त। **पारंगत –** पूरी तरह कुशल। **प्रत्यक्ष –** ऑखों के सामने। **गंभीर –** गहरे। **पूर्व लेख –** जन्म से पहले भाग्य में लिखा हुआ। **उत्पीड़न –** शोषण। **विवशतावश –** मजबूरी से। **दुभावना –** बुरी नीयत। **निविवाद –** बिना विवाद के। **आत्म-शक्ति –** अंदर की शक्ति। **खदजनक –** दुखदायक। **नीरस गाथा –**उबाऊ बातें। **भ्रातृता –** भाईचारा। **वांछित –** आवश्यक। **संचारित –** फैलाया हुआ। **बहुविधि –** अनेक प्रकार। **अबाध –** बिना किसी रुकावट के।
गमनागमन – आना-जाना। **स्वाधीनता –** आजादी। **जीविकोपाजन –** रोजगार जुटाना। **आलोचक –** निंदक, तर्कयुक्त समीक्षक। **वज़न रखना –** महत्वपूर्ण होना। **तथ्य –**वास्तविक। **नियामक –** दिशा देने

वाले। **उत्तराधिकार –** पूर्वजों या पिता से मिलने वाला अधिकार। **नानाजन –** ज्ञान प्राप्त करना। **विशिष्टता –** अलग पहचान।
सर्वथा – सब तरह से। **बाजी मार लेना –** जीत हासिल करना । **उत्तम –** श्रेष्ठ। **कुल –** परिवार। **ख्याति –** प्रसिद्ध। **प्रतिष्ठा –**सम्मान। **निष्पक्ष –** भेदभाव रहित। **तकाज़ा –**आवश्यकता। **नितांत –** बिलकुल। **औचित्य –** उचित होना। **पाला पड़ना –** संपर्क होना। **व्यवहार्य –** जो व्यावहारिक हो । **कसौटी –** जाँच का आधार।

अर्थग्रहण संबंधी प्रश्न

(क) श्रम-विभाजन और जाति-प्रथा

निम्नलिखित गदयांशों को पढ़कर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दीजिए –

प्रश्न 1:
यह विडंबना की ही बात है कि इस युग में भी 'जातिवाद' के पोषकों की कमी नहीं है। इसके पोषक कई आधारों पर इसका समर्थन करते हैं। समर्थन का एक आधार यह कहा जाता है कि आधुनिक सभ्य समाज 'कार्य-कुशलता' के लिए श्रम-विभाजन को आवश्यक मानता है, और चूँकि जाति-प्रथा भी श्रम-विभाजन का ही दूसरा रूप है इसलिए इसमें कोई बुराई नहीं है। इस तर्क के संबंध में पहली बात तो यही आपत्तिजनक है कि जाति-प्रथा श्रम-विभाजन के साथ-साथ श्रमिक-विभाजन का भी रूप लिए हुए है।

प्रश्न:

1. लेखक किस विडंबना की बात कह रहा हैं?
2. जातिवाद के पोषक अपने समर्थन में क्या तक देते हैं?
3. लेखक क्या आपत्ति दर्ज कर रहा है?
4. लेखक किन पर व्यंग्य कर रहा हैं?

उत्तर-

1. लेखक कह रहा है कि आधुनिक युग में कुछ लोग जातिवाद के पोषक हैं। वे इसे बुराई नहीं मानते। इस प्रवृत्ति को वह विडंबना कहता है।
2. जातिवाद के पोषक अपने मत के समर्थन में कहते हैं कि आधुनिक सभ्य समाज में कार्य-कुशलता के लिए श्रम-विभाजन को आवश्यक माना गया है। जाति-प्रथा भी श्रम-विभाजन का दूसरा रूप है। अत: इसमें कोई बुराई नहीं है।
3. लेखक जातिवाद के पोषकों के तर्क को सही नहीं मानता। वह कहता है कि जाति-प्रथा केवल श्रम-विभाजन ही नहीं करती। यह श्रमिक-विभाजन का भी रूप लिए हुए है। श्रम-विभाजन और श्रमिक-विभाजन दोनों में अंतर है।
4. लेखक आधुनिक युग में जाति-प्रथा के समर्थकों पर व्यंग्य कर रहा है।

प्रश्न 2:
श्रम-विभाजन निश्चय ही सभ्य समाज की आवश्यकता है, परंतु किसी भी सभ्य समाज में श्रम-विभाजन की

व्यवस्था श्रमिकों का विभिन्न वर्गों में अस्वाभाविक विभाजन नहीं करती। भारत की जाति-प्रथा की एक और विशेषता यह है कि यह श्रमिकों का अस्वाभाविक विभाजन ही नहीं करती बल्कि विभाजित विभिन्न वर्गों को एक-दूसरे की अपेक्षा ऊँच-नीच भी करार देती है, जो कि विश्व के किसी भी समाज में नहीं पाया जाता।
प्रश्न:

1. श्रम-विभाजन के विषय में लेखक क्या कहता हैं?
2. भारत की जाति – प्रथा की क्या विशेषता है ?
3. श्रम-विभाजन व श्रमिक-विभाजन में क्या अंतर हैं?
4. विश्व के अन्य समाज में क्या नहीं पाया जाता?

उत्तर –

1. श्रम-विभाजन के विषय में लेखक कहता है कि आधुनिक समाज में श्रम-विभाजन आवश्यक है, परंतु कोई भी सभ्य समाज श्रमिकों का विभिन्न वर्गों में अस्वाभाविक विभाजन नहीं करता।

2. भारत की जाति-प्रथा श्रमिकों का अस्वाभाविक विभाजन तो करती ही है, साथ ही वह इन वर्गों को एक-दूसरे से ऊँचा-नीचा भी घोषित करती है।

3. 'श्रम-विभाजन' का अर्थ है-अलग-अलग व्यवसायों का वर्गीकरण। 'श्रमिक-विभाजन' का अर्थ है-जन्म के आधार पर व्यक्ति का व्यवसाय व स्तर निश्चित कर देना।

4. विश्व के अन्य समाज में श्रमिकों के विभिन्न वर्गों को एक-दूसरे से नीचा नहीं दिखाया जाता।

प्रश्न 3:
जाति-प्रथा पेशे का दोषपूर्ण पूर्वनिर्धारण ही नहीं करती बल्कि मनुष्य को जीवन-भर के लिए एक पेशे में बाँध भी देती है। भले ही पेशा अनुपयुक्त या अपर्याप्त होने के कारण वह भूखों मर जाए। आधुनिक युग में यह स्थिति प्राय: आती है, क्योंकि उद्योग-धंधों की प्रक्रिया व तकनीक में निरंतर विकास और कभी-कभी अकस्मात परिवर्तन हो जाता है, जिसके कारण मनुष्य को अपना पेशा बदलने की आवश्यकता पड़ सकती है और यदि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मनुष्य को अपना पेशा बदलने की स्वतंत्रता न हो तो इसके लिए भूखों मरने के अलावा क्या चारा रह जाता है? हिंदू धर्म की जाति-प्रथा किसी भी व्यक्ति को ऐसा पेशा चुनने की अनुमति नहीं देती है, जो उसका पैतृक पेशा न हो, भले ही वह उसमें पारंगत हो। इस प्रकार पेशा-परिवर्तन की अनुमति न देकर जाति-प्रथा भारत में बेरोजगारी का एक प्रमुख व प्रत्यक्ष कारण बनी हुई है।
प्रश्न:

1. जाति-प्रथा किसका पूवनिर्धारण करती हैं? उसका क्या दुष्परिणाम होता है?
2. आधुनिक युग में पेशा बदलने की जरूरत क्यों पड़ती हैं?
3. पेशा बदलने की स्वतंत्रता न होने से क्या परिणाम होता हैं?
4. हिन्दू धर्म की क्या स्थिति है ?

उत्तर –

1. जाति-प्रथा पेशे का दोषपूर्ण पूर्वनिर्धारण करती है। वह मनुष्य को जीवन-भर के लिए एक पेशे से बाँध देती है। पेशा अनुपयुक्त या अपर्याप्त होने के कारण व्यक्ति को भूखा मरना पड़ सकता है।
2. आधुनिक युग में उद्योग-धंधों का स्वरूप बदलता रहता है। तकनीक के विकास से किसी भी व्यवसाय का रूप बदल जाता है। इस कारण व्यक्ति को अपना पेशा बदलना पड़ सकता है।
3. तकनीक व विकास-प्रक्रिया के कारण उद्योगों का स्वरूप बदल जाता है। इस कारण व्यक्ति को अपना व्यवसाय बदलना पड़ता है। यदि उसे अपना पेशा बदलने की स्वतंत्रता न हो तो उसे भूखा ही मरना पड़ेगा।
4. हिंदू धर्म में जाति-प्रथा दूषित है। वह किसी भी व्यक्ति को ऐसा पेशा चुनने की आजादी नहीं देती जो उसका पैतृक पेशा न हो, भले ही वह उसमें पारंगत हो।

(ख) मेरी कल्पना का आदर्श समाज

प्रश्न 4:
फिर मेरी दृष्टि में आदर्श समाज क्या है? ठीक है, यदि ऐसा पूछेगे, तो मेरा उत्तर होगा कि मेरा आदर्श समाज स्वतंत्रता, समता, भ्रातृता पर आधारित होगा? क्या यह ठीक नहीं है, भ्रातृता अर्थात भाईचारे में किसी को क्या आपत्ति हो सकती है? किसी भी आदर्श समाज में इतनी गतिशीलता होनी चाहिए जिससे कोई भी वांछित परिवर्तन समाज के एक छोर से दूसरे तक संचारित हो सके। ऐसे समाज के बहुविधि हितों में सबका भाग होना चाहिए तथा सबको उनकी रक्षा के प्रति सजग रहना चाहिए। सामाजिक जीवन में अबाध संपर्क के अनेक साधन व अवसर उपलब्ध रहने चाहिए। तात्पर्य यह कि दूध-पानी के मिश्रण की तरह भाईचारे का यही वास्तविक रूप है, और इसी का दूसरा नाम लोकतंत्र है।
प्रश्न:

1. लेखक ने किन विशेषताओं को आदर्शा समाज की धुरी माना हैं और क्यों?
2. भ्रातृता के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
3. ‘अबाध संपर्क ‘ से लेखक का क्या अभिप्राय है ?
4. लोकतत्र का वास्तविक स्वरूप किसे कहा गया हैं? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर –

1. लेखक उस समाज को आदर्श मानता है जिसमें स्वतंत्रता, समानता व भाईचारा हो। उसमें इतनी गतिशीलता हो कि सभी लोग एक साथ सभी परिवर्तनों को ग्रहण कर सकें। ऐसे समाज में सभी के सामूहिक हित होने चाहिएँ तथा सबको सबकी रक्षा के प्रति सजग रहना चाहिए।
2. ‘भ्रातृता’ का अर्थ है-भाईचारा। लेखक ऐसा भाईचारा चाहता है जिसमें बाधा न हो। सभी सामूहिक रूप से एक-दूसरे के हितों को समझे तथा एक-दूसरे की रक्षा करें।
3. ‘अबाध संपर्क’ का अर्थ है-बिना बाधा के संपर्क। इन संपकों में साधन व अवसर सबको मिलने चाहिए।

4. लोकतंत्र का वास्तविक स्वरूप भाईचारा है। यह दूध-पानी के मिश्रण की तरह होता है। इसमें उदारता होती है।

प्रश्न 5:
जाति-प्रथा के पोषक जीवन, शारीरिक-सुरक्षा तथा संपत्ति के अधिकार की स्वतंत्रता को तो स्वीकार कर लेंगे, परंतु मनुष्य के सक्षम एवं प्रभावशाली प्रयोग की स्वतंत्रता देने के लिए जल्दी तैयार नहीं होंगे, क्योंकि इस प्रकार की स्वतंत्रता का अर्थ होगा अपना व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता किसी को नहीं है, तो उसका अर्थ उसे 'दासता' में जकड़कर रखना होगा, क्योंकि 'दासता' केवल कानूनी पराधीनता को नहीं कहा जा सकता। 'दासता' में वह स्थिति भी सम्मिलित है जिससे कुछ व्यक्तियों को दूसरे लोगों के द्वारा निर्धारित व्यवहार एवं कर्तव्यों का पालन करने के लिए विवश होना पड़ता है। यह स्थिति कानूनी पराधीनता न होने पर भी पाई जा सकती है। उदाहरणार्थ, जाति-प्रथा की तरह ऐसे वर्ग होना संभव है, जहाँ कुछ लोगों की अपनी इच्छा के विरुद्ध पेशे अपनाने पड़ते हैं।
प्रश्न:

1. लेखक के अनुसार जाति-प्रथा के समर्थक किन अधिकारों को देने के लिए राजी हो सकते हैं और किन्हें नहीं?
2. 'दासता' के दो लक्षण स्पष्ट कीजिए।
3. व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता न दिए जाने पर लेखक ने क्या संभावना व्यक्त की हैं? स्पष्ट कीजिए।
4. 'जाति-प्रथा की तरह ऐसे वर्ण होना' से आबेडकर का क्या आशय हैं?

उत्तर –

1. लेखक के अनुसार, जाति-प्रथा के समर्थक जीवन, शारीरिक सुरक्षा व संपत्ति के अधिकार को देने के लिए राजी हो सकते हैं, किंतु मनुष्य के सक्षम व प्रभावशाली प्रयोग की स्वतंत्रता देने के लिए तैयार नहीं हैं।
2. 'दासता' के दो लक्षण हैं-पहला लक्षण कानूनी है। दूसरा लक्षण वह है जिसमें कुछ व्यक्तियों को दूसरे लोगों द्वारा निर्धारित व्यवहार व कर्तव्यों का पालन करने के लिए विवश किया जाता है।
3. व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता न दिए जाने पर लेखक यह संभावना व्यक्त करता है कि समाज उन लोगों को दासता में जकड़कर रखना चाहता है।
4. इसका आशय यह है कि समाज में अनेक ऐसे वर्ग हैं जो अपनी इच्छा के विरुद्ध थोपे गए व्यवसाय करते हैं। वे चाहे कितने ही योग्य हों, उन्हें परंपरागत व्यवसाय करने पड़ते हैं।

प्रश्न 6:
व्यक्ति-विशेष के दृष्टिकोण से, असमान प्रयत्न के कारण, असमान व्यवहार को अनुचित नहीं कहा जा सकता। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमता का विकास करने का पूरा प्रोत्साहन देना सर्वथा उचित है। परंतु यदि मनुष्य प्रथम दो बातों में असमान है तो क्या इस आधार पर उनके साथ भिन्न व्यवहार उचित हैं? उत्तम व्यवहार के हक की प्रतियोगिता में वे लोग निश्चय ही बाजी मार ले जाएँगे, जिन्हें उत्तम कुल, शिक्षा, पारिवारिक ख्याति, पैतृक संपदा तथा व्यावसायिक प्रतिष्ठा का लाभ प्राप्त है। इस प्रकार पूर्ण सुविधा संपन्नों को ही 'उत्तम व्यवहार' का हकदार माना जाना वास्तव में निष्पक्ष निर्णय नहीं कहा जा सकता। क्योंकि यह सुविधा-संपन्नों के पक्ष में निर्णय देना होगा। अत: न्याय का तकाजा यह है कि जहाँ हम तीसरे

(प्रयासों की असमानता, जो मनुष्यों के अपने वश की बात है) आधार पर मनुष्यों के साथ असमान व्यवहार को उचित ठहराते हैं, वहाँ प्रथम दो आधारों (जो मनुष्य के अपने वश की बातें नहीं हैं) पर उनके साथ असमान व्यवहार नितांत अनुचित है। और हमें ऐसे व्यक्तियों के साथ यथासंभव समान व्यवहार करना चाहिए। दूसरे शब्दों में, समाज को यदि अपने सदस्यों से अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करनी है, तो यह तो संभव है, जब समाज के सदस्यों को आरंभ से ही समान अवसर एवं समान व्यवहार उपलब्ध कराए जाएँ।

प्रश्न:

1. लेखक किस असमान व्यवहार को अनुचित नहीं मानता ?
2. लेखक किस बात को निष्पक्ष निर्णय नहीं मानता?
3. न्याय का तकाजा क्या हैं?
4. समाज अपने सदस्यों से अधिकतम उपयोगिता कैसे प्राप्त कर सकता हैं?

उत्तर –

1. लेखक उस असमान व्यवहार को अनुचित नहीं मानता जो व्यक्ति-विशेष के दृष्टिकोण से असमान प्रयत्न के कारण किया जाता है।
2. लेखक कहता है कि उत्तम व्यवहार प्रतियोगिता में उच्च वर्ग बाजी मार जाता है क्योंकि उसे शिक्षा, पारिवारिक ख्याति, पैतृक संपदा व व्यावसायिक प्रतिष्ठा का लाभ प्राप्त है। ऐसे में उच्च वर्ग को उत्तम व्यवहार का हकदार माना जाना निष्पक्ष निर्णय नहीं है।
3. न्याय का तकाजा यह है कि व्यक्ति के साथ वंश परंपरा व सामाजिक उत्तराधिकार के आधार पर असमान व्यवहार न करके समान व्यवहार करना चाहिए।
4. समाज अपने सदस्यों से अधिकतम उपयोगिता तभी प्राप्त कर सकता है जब समाज के सदस्यों को आरंभ से ही समान अवसर व समान व्यवहार उपलब्ध कराए जाएँगे।

पाठ्यपुस्तक से हल प्रश्न

पाठ के साथ

प्रश्न 1:
जाती – प्रथा को श्रम – विभाजन का ही एक रूप न मानने के पीछे आंबेडकर के क्या तर्क हैं ?

उत्तर –
जाति-प्रथा को श्रम-विभाजन का ही एक रूप न मानने के पीछे आंबेडकर के निम्नलिखित तर्क हैं –

1. जाति-प्रथा, श्रम-विभाजन के साथ-साथ श्रमिक-विभाजन भी करती है।

2. सभ्य समाज में श्रम-विभाजन आवश्यक है, परंतु श्रमिकों के विभिन्न वर्गों में अस्वाभाविक विभाजन किसी अन्य देश में नहीं है।
3. भारत की जाति-प्रथा में श्रम-विभाजन मनुष्य की रुचि पर आधारित नहीं होता। वह मनुष्य की क्षमता या प्रशिक्षण को दरकिनार करके जन्म पर आधारित पेशा निर्धारित करती है।
4. जु:शुल्यक विपितपिस्थितयों मेंपेश बालक अनुपितनाह देता फल भूखे मरने की नौबत आ जाती है।

प्रश्न 2:
जाति-प्रथा भारतीय समाज में बेरोजगारी व भुखमरी का भी एक कारण कैसे बनती रही हैं? क्या यह स्थिति आज भी हैं?
उत्तर –
जाति-प्रथा भारतीय समाज में बेरोजगारी व भुखमरी का कारण भी बनती रही है। भारत में जाति-प्रथा के कारण व्यक्ति को जन्म के आधार पर एक पेशे से बाँध दिया जाता था। इस निर्णय में व्यक्ति की रुचि, योग्यता या कुशलता का ध्यान नहीं रखा जाता था। उस पेशे से गुजारा होगा या नहीं, इस पर भी विचार नहीं किया जाता था। इस कारण भुखमरी की स्थिति आ जाती थी। इसके अतिरिक्त, संकट के समय भी मनुष्य को अपना पेशा बदलने की अनुमति नहीं दी जाती थी। भारतीय समाज पैतृक पेशा अपनाने पर ही जोर देता था। उद्योग-धंधों की विकास प्रक्रिया व तकनीक के कारण कुछ व्यवसायी रोजगारहीन हो जाते थे। अत: यदि वह व्यवसाय न बदला जाए तो बेरोजगारी बढ़ती है। आज भारत की स्थिति बदल रही है। सरकारी कानून, सामाजिक सुधार व विश्वव्यापी परिवर्तनों से जाति-प्रथा के बंधन काफी ढीले हुए हैं, परंतु समाप्त नहीं हुए हैं। आज लोग अपनी जाति से अलग पेशा अपना रहे हैं।

प्रश्न 3:
लेखक के मत से 'दासता' की व्यापक परिभाषा क्या हैं?
उत्तर –
लेखक के मत से 'दासता' से अभिप्राय केवल कानूनी पराधीनता नहीं है। दासता की व्यापक परिभाषा है- किसी व्यक्ति को अपना व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता न देना। इसका सीधा अर्थ है-उसे दासता में जकड़कर रखना। इसमें कुछ व्यक्तियों को दूसरे लोगों द्वारा निर्धारित व्यवहार व कर्तव्यों का पालन करने के लिए विवश होना पड़ता है।
प्रश्न 4:

शारीरिक वंश-परंपरा और सामाजिक उत्तराधिकार की दृष्टि से मनुष्यों में असमानता संभावित रहने के बावजूद आंबेडकर समता' को एक व्यवहार्य सिद्धांत मानने का आग्रह क्यों करते हैं? इसके पीछे उनके क्या तर्क हैं?

उत्तर –
शारीरिक वंश-परंपरा और सामाजिक उत्तराधिकार की दृष्टि से मनुष्यों में असमानता संभावित रहने के बावजूद आंबेडकर 'समता' को एक व्यवहार्य सिद्धांत मानने का आग्रह करते हैं क्योंकि समाज को अपने सभी सदस्यों से अधिकतम उपयोगिता तभी प्राप्त हो सकती है जब उन्हें आरंभ से ही समान अवसर एवं समान व्यवहार उपलब्ध कराए जाएँ। व्यक्ति को अपनी क्षमता के विकास के लिए समान अवसर देने चाहिए। उनका तर्क है कि उत्तम व्यवहार के हक में उच्च वर्ग बाजी मार ले जाएगा। अत: सभी व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार करना चाहिए।

प्रश्न 5:
सही में अबेडकर ने भावनात्मक समत्व की मानवीय दृष्टि के तहत जातिवाद का उन्मूलन चाहा हैं, जिसकी प्रतिष्ठा के लिए भौतिक स्थितियों और जीवन-सुविधाओं का तर्क दिया हैं। क्या इससे आप सहमत हैं?
उत्तर –
हम लेखक की बात से सहमत हैं। उन्होंने भावनात्मक समत्व की मानवीय दृष्टि के तहत जातिवाद का उन्मूलन चाहा है जिसकी प्रतिष्ठा के लिए भौतिक स्थितियों और जीवन-सुविधाओं का तर्क दिया है। भावनात्मक समत्व तभी आ सकता है जब समान भौतिक स्थितियाँ व जीवन-सुविधाएँ उपलब्ध होंगी। समाज में जाति-प्रथा का उन्मूलन समता का भाव होने से ही हो सकता है। मनुष्य की महानता उसके प्रयत्नों के परिणामस्वरूप होनी चाहिए। मनुष्य के प्रयासों का मूल्यांकन भी तभी हो सकता है जब सभी को समान अवसर मिले। शहर में कान्वेंट स्कूल व सरकारी स्कूल के विद्यार्थियों के बीच स्पर्धा में कान्वेंट स्कूल का विद्यार्थी ही जीतेगा क्योंकि उसे अच्छी सुविधाएँ मिली हैं। अत: जातिवाद का उन्मूलन करने के बाद हर व्यक्ति को समान भौतिक सुविधाएँ मिलें तो उनका विकास हो सकता है, अन्यथा नहीं।

प्रश्न 6:
आदर्श समाज के तीन तत्वों में से एक 'भ्रातृता' को रखकर लेखक ने अपने आदर्श समाज में स्त्रियों को भी सम्मिलित किया हैं अथवा नहीं? आप इस 'भ्रातृता' शब्द से कहाँ तक सहमत हैं? यदि नहीं, तो आप क्या शब्द उचित समझेंगे/ समझेगी?
उत्तर –
आदर्श समाज के तीन तत्वों में से एक 'भ्रातृता' को रखकर लेखक ने अपने आदर्श समाज में स्त्रियों को भी सम्मिलित किया है। लेखक समाज की बात कर रहा है और समाज स्त्री-पुरुष दोनों से मिलकर बना है। उसने आदर्श समाज में हर आयुवर्ग को शामिल किया है। 'भ्रातृता' शब्द संस्कृत का शब्द है जिसका अर्थ है-भाईचारा। यह सर्वथा उपयुक्त है। समाज में भाईचारे के सहारे ही संबंध बनते हैं। कोई व्यक्ति एक-दूसरे से अलग नहीं रह सकता। समाज में भाईचारे के कारण ही कोई परिवर्तन समाज के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचता है।

पाठ के आस-पास

प्रश्न 1:
आबेडकर ने जाति-प्रथा के भीतर पेशे के मामले में लचीलापन न होने की जो बात की हैं-उस संदर्भ में शेखर जोशी की कहानी 'गलता लोहा ' पर पुनर्वचार कीजिए।
उत्तर –

'गलता लोहा' कहानी बहुत से मुद्दों पर प्रकाश डालती है। इसमें दो बालक हैं। एक का नाम धनराम है, जो लुहार का बेटा है। दूसरा लड़का मोहन है, जो ब्राह्मण का बेटा है। यहाँ मास्टर धनराम को शिक्षा ग्रहण करने के लायक नहीं मानता है। वह यह मान लेता है कि लुहार का बेटा होने के कारण शिक्षा इसके लिए नहीं बनी है और वह धनराम के मन में भी यह बात बिठा देते हैं। उसे अपनी लुहार जाति होने के कारण शिक्षा के स्थान पर लुहार के कार्य को ही अपनाना पड़ता है। यही सख्त व्यवहार धनराम को शिक्षित नहीं बनने देता है। आंबेडकर जी ने यही बात कही है। यदि धनराम पर ध्यान दिया जाता, तो वह अपने पैतृक व्यवसाय से बाहर आ सकता था। इस तरह वह दूसरा व्यवसाय कर सकता था। मोहन परिस्थिति वश लुहार का कार्य करने के लिए विवश होता है।

प्रश्न 2:

कार्य कुशलता पर जाति प्रथा का प्रभाव विषय पर समूह में चर्चा कीजिए। चर्चा के दौरान उभरने वाले बिंदुओं को लिपिबद्ध कीजिए।

उत्तर –

कार्य कुशलता पर जाति प्रथा का विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि एक चित्रकार का बेटा अच्छा चित्रकार हो या एक व्यापारी का बेटा अच्छा व्यापारी हो। हर व्यक्ति की अपनी जन्मजात योग्यता तथा क्षमता होती हैं। एक चित्रकार का बेटा अच्छा व्यापारी बन सकता है और एक व्यवसायी का बेटा अच्छा चित्रकार। अतः हमें यह अधिकार होना चाहिए कि व्यक्ति को उसकी कार्य कुशलता के आधार पर पेशे चुनने का अधिकार हो। न कि जाति प्रथा के आधार पर किसी मनुष्य का पेशा निर्धारित किया जाए। जाति प्रथा ने लंबे समय तक लोगों का शोषण ही नहीं किया है बल्कि उनकी योग्यताओं तथा क्षमताओं का भी गला घोंटा है। यह उचित नहीं है।

इन्हें भी जानें

- आंबेडकर की पुस्तक जातिभेद का उच्छेद और इस विषय में गांधी जी के साथ उनके संवाद की जानकारी प्राप्त कीजिए।
- हिंद स्वराज नामक पुस्तक में गांधी जी ने कैसे आदर्श समाज की कल्पना की है, उसी भी पढ़े।

TOPPERS CLAN